आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 2/मार्च 2023
Received: 10/03/2023; Accepted: 13/03/2023; Reviewed: 22/03/2023; Published: 24/03/2023

किन्नर जीवन की त्रासदी का अफ़साना- दमियाना

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
सह आचार्य, हिन्दी विभाग,शा.घो.कला,विज्ञान
एवं गो. प. वाणिज्य महाविद्यालय, शिवले,
तहसिल - मुरबाड, जिला - थाना 421 401(महा.)
दूरभाष – 9423025562.
ई मेल: prakashdhumal69@gmail.com

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल, **किन्नर जीवन की त्रासदी का अफ़साना- दमियाना**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 2 / मार्च 2023,(174-184)

सारांश :-

मनुष्य ने अपने विकास की यात्रा के अनेक पड़ाव पार किये हैं। मानव की उत्पत्ति से लेकर अब तक मानव ने कई प्रकार के प्राकृतिक, दैहिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तनों का सामना किया है और यथासम्भव इन परिवर्तनों को स्वीकार भी किया है। वह अन्य प्राकृतिक जिवों की अपेक्षा अधिक संघर्षशील और चिन्तनशील प्राणी माना जाता है। मानव की इसी चिन्तनशीलता ने मानव को नये आयामों में चिन्तन करने के लिए प्रेरित किया है। समाज में होने वाले आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों के चलते मानव की मानसिकता में भी परिवर्तन होता है। यही कारण है कि भूमण्डलीकरण के कारण पैदा हुई स्थितियों ने मानव को नये ढंग से सोचने की आधारभूमि प्रदान की। उत्तरआधुनिक सोच ने मानव को केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति से बाहर लाकर हाशिए की दुनिया में प्रविष्ट होने के लिए बाध्य किया। उसकी मानसिकता को एक नया फलक मिला, जिसके परिणाम स्वरुप हाशिए के लोगों को मुख्यधारा में स्थान मिलना प्रारम्भ हुआ। यह परिवर्तन सामाजिक विकास के नये पड़ाव का सूचक सिध्द हुआ है । समाज में परिवर्तन की इस लहर से समाज में

उपेक्षित माने जाने वाले वर्गो को भी पहचान मिली है और नि:सन्देह हिन्दी साहित्य ने इस आन्दोलन में सराहनीय भूमिका निभायी है। समाज का एक वर्ग 20वीं शती के उत्तरार्ध्द तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र से बाहर रहा है। विगत शती में स्त्री, दलित, आदिवासी-जनजातीय, विकलांग आदि जन को तो विशेष अभिव्यक्ति मिली लेकिन हिज़डा या किन्नर समाज को हिन्दी साहित्य में कोई स्थान नहीं मिला, परन्तु 21 वीं शती के हिन्दी साहित्य में इस वर्ग की पहचान का स्वर मुखरित हो रहा है। हिजड़ा या किन्नरों के प्रति समाज की यथास्थितिवादी सोच को दरकाने के लिए इधर हिन्दी के लेखक लेखिकाओं का एक बहुत छोटा-सा तबका ही सही सक्रिय हुआ है। 'दरमियाना' इसी प्रयास का साक्षी उपन्यास है।

बीज शब्द :- तृतीय लिंगी, हिजडा, थर्ड जेण्डर, नेग, किन्नर दमियाना, मनोविश्लेषण

किन्न्र जीवन की त्रासदी का अफ़साना-दमियाना :-

हिजड़ा समाज हाशिए का समाज है। इस वर्ग को केन्द्र में रखकर सबसे पहले सुभाष अखिल ने 'दरमियाना' नाम की कहानी लिखी जो सबसे पहले सारिका के अक्टूबर, 1980 के अंक में प्रकाशित हुई। इस कहानी से लेखक को एक पहचान मिली। ..... अर्चना वर्मा, सुरेश उनियाल, बलराम, राजकमल, अरुणेन्द्र वर्मा, आंजिली देशपाण्डे, प्रीतपाल कौर, संजीव गुप्ता, सुबोध और वंदना जोशी जैसे युवा साथियों के निरन्तर आग्रह, सुझाव और दबाव के चलते 'दरामियाना' कहानी ने उपन्यास की शक्ल अख्तियार कर ली। यह उपन्यास पाँच खण्डों में विभक्त है -

1. तारा और रेश्मा की संगत
2. संजय से संध्या होने तक
3. जिस्म और जज्बात का संतुलन
4. कातिल अदाओं का कत्ल और
5. दया की दया का अंत।

इस उपन्यास में स

इस उपन्यास में सुभाष अखिल(लेखक, पत्रकार के रुप में) तारा (सितारा बेगम से तारा बनी), रेशमा, संजय से संध्या, सुनन्दा, नगमा, रेखा, गुलाबो, चन्दा, निशा, रेखा की माँ, मोहिनी, सलमा, शर्मा अण्टी, दया मौसी (दया रानी) और रोशनी आदि प्रमुख पात्र हैं। प्रत्येक खण्ड में इसी वर्ग के अलग-अलग पात्रों से पाठक का परिचय होता है। वे अलग-अलग होकर भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कथा सूत्र में पिरोये मनकों की तरह।

सुभाष अखिल ने सबसे पहले हिजड़ा वर्ग पर पूरी निष्ठा और निष्पक्षता के साथ काम किया है। इस संदर्भ में राजकमल ने लिखा है -'"दरमियाना' उपन्यास ऐसे संक्रमित काल में आया है, जब समाज का नजरिया उस अवांच्छित, घृणित वर्ग के प्रति बहुत हद तक बदल रहा है। कई सामाजिक संगठन इनके सामाजिक हक़ के लिए लड़ाई लड़ते रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से कुछ अधिक जागरुकता का माहौल बना है। उस वर्ग की चर्चा करते हुए लोग अब चेहरे पर घृणित भाव नहीं लाते, उतना बुराभी नहीं मानते। लोग उनके विषय में अधिक-से-अधिक जानना चाहते हैं। बुध्दिजीवी वर्ग खुलकर उनका समर्थन करता दिखता है। जब से सर्वोच्च न्यायालयने तीसरे लिंग यानी थर्ड जेण्डर के रुप में इस वर्ग विशेष को मान्यता दी है, तब से उनमें हिम्मत-हौसला बड़ा है। वे बेझिझक, आत्मविश्वास से अपनी बात कहने लगे हैं। पुस्तकों में आप बीती लिखने के अलावा विविध मीडिया माध्यमों से अपनी सोच, अपने हालात, दुनिया के सामने रखने में सक्षम हुए हैं। राजनीतिक चुनावों में अपनी उपस्थिति दर्ज की है । लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी तथा पायाल जैसे व्यक्तित्व भी इसके उदाहरण है।"[1]

उपन्यास का प्रथम खण्ड 'दारा और रेशमा की संगत' का है जो तारा और रेशमा (तृतीय लिंगी) की कहानी बयाँ करता हैं, जिनको लेखक ने न केवल नज़दीक से देखा है, बल्कि उनके साथ जिन्दगी के अनमोल लम्हों को बिताया भी है। तारा अपने पाँच साथियों के साथ आशु (लेखक) के गाँव बधावा गाने आती है। उसमें चार औंरत नुमा और एक मर्द की तरह हैं। शायद सब के सब दरमियाने! यानी न तो वे जनाने थे और न ही मर्दाने। फिर भी आशु उन सबके लिए स्त्रीवाचक सम्बोधन का प्रयोग करता है। तारा स्वयं को 'नटराज की भाभी' कहती है। आशु लिखता हैं –

"किसी के भी द्वारा इस सम्बोधन से पुकार लिये जाने पर, वह उसी तरह नाटकीय ढंग से लजा जाया करती थी मानो बिना किसी पूर्व-सूचना के अचानक - 'नटराज' के बड़े भाई उसके सामने आ खड़े हुए हों। किन्तु 'नटराज' कौन था, यह मैं आज भी नहीं जानता मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी, उसने कभी नहीं बतलाया। वैसे उस ताली बजाने वाले दरनियाने का अपना भी एक नाम था - तारा।"[2]

नाच-गान के बाद तारा ठनगन करके घर की मालकिन से नेग के इक्यावन रुपये लेकर आशीर्वाद देती है -

"अरी मेरी प्यारी ननदिया ! अगर पहले ही मान जाती, तो काहे को इतनी जिल्लत उठानी पड़ती..... चल खुश रह!..... हर साल फूले-फले, हमारे नन्दोई की जवानी बनी रहे..... इस चाँद के टुकडे को भाई मिले..... खुदा करे....."[3]

उस समय लेखक केवल दस-ग्यारह वर्ष का था। यहीं से आशु तारा का देवर बन गया और तारा उसकी भाभी। तारा अपने संबोधन में कहती है - "अरे ओ मरे देवर जी! कहाँ चले अपनी भाभी को छोड़कर....."[4] लेकिन बालक में इतना साहस नहीं था कि वह तारा के पास रुक जाता। इसके बाद जब भी तारा आशु की बस्ती में आती उसे लगता कि जैसे मनोरंजन का, इससे बढ़िया और मुफत्, दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता.....। आशु एक सामान्य परिवार का लड़का था। उसको भाई पैदा हुआ तो वह तारा को लेकर स्वयं अपने घर पर आया। यहाँ पर तारा किसी चीज़ के लिए जिद नहीं करती। इक्यावन रुपये की जगह मात्र एक रुपया लेकर आशीर्वाद देती है – "सगन तो सगन होता है बहना। फिर एक क्या और इक्यावन क्या?.....जल्दी से बड़ा आदमी बन जाये मेरा राजा बेटा..... पढ़े-लिखे-कमाये, फिर चॉद-सी दुल्हनिया लाये, मेरी बहना के लिये।" आशु की माँ को समझाते हुए कहती है - "बस री बहना! अब और मत ना बनइओ, नहीं तो सुतरे पालने मुशकिल हो जाते हैं।"[5]

तारा हिजड़ा होते हुए भी संवेदनशील है। वह सुख-दु:ख, अमीरी-गरीबी को जानती है। आशु के घर की टूटी हुई कुर्सी, फटी हुई चादर या उसकी माँ की पुरानी, मैली-सी धोती पर लगे पैबंद, तारा से नहीं छिप सके थे। सानिथ्य से परिचय प्रगाढ़ होता है और परिचय की प्रगाढ़ता से प्रेम। किन्तु जिस तरह सानिध्य से प्रेम तक की प्रक्रिया को क्षणों में विभाजित नहीं किया जा सकता, ठिक उसी तरह, आशु और तारा के अंतरंग हो जाने वाले क्षणों को भी रेखांकित करना कठिन है। आशु कब और क्यों उसके इतना समीप चला गया था, वह क्यों और कैसे आशु तक सिमट गयी थी... कहा नहीं जा सकता।

तारा आशु की माँ की उम्र की थी। वह आती तो आते ही आशु को अपनी बाहों में भर लेती। उसे अपनी गोद में बैठा, उसके बालों से खेलती, पीठ को सहलाती या बनारसी पत्तों की सुर्खी से आशु के दोनों गाल रंग देती... किन्तु वह अब उतना छोटा नहीं था। पन्द्रह-सोलह के आसपास था, इसलिए महसूसने लगा था कि तारा का स्पर्श, आशु में एक आजीबसी गुदगुदी भर जाता है। तारा की गोद में बैटा हुआ आशु बहुत देर तक उसे देखता रहता था – "उसका हल्का गेहुआँ रंग, तीखी नाक पर नगदार फूल, आँखों में अभिसारिकाओं की –सी खुमारी, काजल लगा लेने से और निखर उठती थी। उसके मेंहदी लगे हुए, सुनहरे से बाल थे। बनारसी पत्तों की सुर्खी लिये हुए, उसके रसदार होंठ, मुझे निमंत्रण देते-से लगते थे। उसकी उम्र यहीं कोई चालीस के आस-पास थी मेरी माँ की आयु भी तब इससे कम नहीं रही होगी।"[6]

आशु की संगत कुछ खराब लड़कों के साथ हो गयी थी। तारा को पता चल गया कि उसकी उठ-बैठ अच्छी नहीं है। उसकी सोहबत में जुआरी-शराबी बैठते हैं। उसने यह भी जान लिया था कि कि उसका नाम स्कूल

से काट दिया गया है। उसके साथी ने यह भी बतला दिया था कि वह चोरी भी करने लगा है....। एक दिन आशु से मिलने पर वह आशु को डॉटते हुए कहती है – "'हरामजादे!'.... तूने मुझे भी अपनी माँ समझ लिया है क्या? तू क्या समझता है, अगर उसे बेबकूफ बना लेता है, तो मुझे भी बना लेगा? .... तू ये क्या हरकतें करने लगा है? मेरा नहीं तो कम-से -कम अपनी माँ का ही ख्याल किया होता । एक वो हैं बेचारी, जो दुनिया-भर के कपड़े सीकर तुझे ठूँसाती है और एक तू है।..... इससे तो हम जैसे नपूते ही अच्छे। जा हट जा यहाँ से ... जरा-सी शरम बची हो, तो अपना मुँह न दिखइओ.... मान जा बेटा। ये सब अच्छे घर के लड़कों का काम नहीं है। तू उनका साथ छोड़ दे।.... तुझे कोई परेशानी हो, तो मुझसे कह। जितना पैसा –धेला चाहिए, मुझे बता। मैं क्या छाती पे धरके ले जाउँगी, ये सब.... न जाने खुदा ने किस जनम का बैर ढाया है। मेरे ही बीज पड़ सकता तो अब तक मेरा जना भी तेरे ही जैसा होता, पर अपनी तो धरती ही...."[7]

एक लम्बे समय बाद रेशमा आशु से मिलती है। आशु की शादी हो गयी है। वह अपनी पत्नी मधु के साथ खरीदारी करके लौट रहा था। उसी से पता चलता है कि तारा बहुत बीमार है और आशु को बराबर याद करती है। देह से चिपटी पड़ी है, छोडती ही नहीं... उसके जिसम को तो रोग खा गया है, मगर अब भी कभी-कभी बड़बड़ाने लगती है - मेरे आशुए को ढूंढ लाओ। ..... आप दोनों को देखकर, उसकी रुह को सुकून मिलेगा, बाबूजी।"[8] आशु उसे देखने जाता है- यह उसकी आखिरी मुलाकात थी। लेखक लिखता है- "..... मैं आज भी सोचता हूँ, तो उसका पीला, सफेद-जर्द पड़ा चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम जाता है, मैं जिसे अब कभी नहीं धकेल पाता....पारदर्शी चमड़ी के पीछे छिपा हडिडयों का कंकाल... अचेत- सा पड़ा था। उसके दोनों हाथों की हथेलियाँ हिलने की भी स्थिति में नहीं थीं। बनारसी पत्तों की सुर्खी सूखकर, काली पड़ चुकी थी। बेतरतीब बिखरे हुए दूधिया सफेद बाल, रेशमा के 'डायन' शब्द को सार्थक कर रहे थे। उसकी फटी-फटी-सी आँखें, थोड़ी देर खुली रहीं... फिर दोनों ऑखों के कोरों से पानी की एक-एक बूँद दोनों गालों की उभरी हुई हड़िडों पर लुढ़क आयी थी। उसने धीरे से अपनी आँखें बन्द कर ली थी....।"[9] आशु आगेचलकर जहाँ भी तारा का सन्दर्भ आता है, उसे तारा माँ ही कहता है। लेखक ने खण्डों के माध्यम से उपन्यास का क्रमिक विकास किया है। कथा का सूत्रधार या कथावाचक 'आशु' नाम का बालक जैसे - जैसे उम्र के पड़ाव तय करता है, वैसे-वैसे कहानी के पात्र और उसके रिश्तों की परतें, क्रिया कलाप खुलते जाते हैं। उस उपेक्षित वर्ग के प्रति सूत्रधार के अनुभव भी विस्तृत और परिपक्व होते जाते हैं। आरम्भ में कौतुहल के दरीचों से झाँपती कथा बढ़ती हुई उम्र के साथ यथार्थ के घने जंगलों तक जा पहुँचती है।

उपन्यास का दूसरा खण्ड 'संजय से संध्या होने तक' एक ऐसे थर्ड जेण्डर की कहानी है जो शरीर से पुरुष परन्तु आत्मा से स्त्री है । इसका शीर्षक भी संजय से सध्या बनने की यात्रा की गवाही दे रहा है। उपन्यास

के इस खण्ड में 'उपन्यासकार ने रेशमा के द्वारा तारा की गद्दी ग्रहण करना और तारा के अन्तिम संस्कार का वर्णन किया है। यह पुरा खण्ड संजय से सध्या बनने का यात्रा वृतान्त है। संजय से सध्या बनी युवती का रुप वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है - "सामने एक सुन्दर सी युवती खड़ी थी।.... गुलाबी रेशमी जरी वाली साड़ी। सिर पर पल्लू। झेंठ सरर्व लाल। ऑखों में अभिसारिकाओं की-सी खुमारी। कानों में दोनों तरफ अठखेलियाँ करती सी बाल। नग की लैंग भी लरकारा मार रही थी। बाल कटे, मगर करीने से संवारे हुए। तराशी हुयी कमान-सी भवें। एक स्मित-सी लकीर खींचती मुस्कुराहट। मैं पहचान नहीं सका था।"[10] इस खण्ड का किशोर आशु अब वयस्क है। वह शादी-शुदा पुरुष बन चुका है। उसकी नज़र-उसके आसपास के अनुभव अब वैविध्य और विस्तार पा चुके हैं। रेशमा की चेली-संध्या के प्रति उसका बढ़ता रुझान एक सामान्य पुरुष की कमजोरियों को उजागर करता है। कहानी सपाट है। दो किनारों के बीच नदी-सी बहती हुई। उसमें आशु का प्रवेश अतिथि पात्र की तरह है। जो कथा को थोड़ा सहज बनाती है। लेखकने इस खण्ड में एक बहुत खूबसूरत मनोविश्लेषण का नमूना पेश किया है। जब बालक आशु को तारा या कभी रेशमा अपनी बाहों में जकड़ती थी, तो वह कसमसाकर छूटने का प्रयत्न करता था। उसे कुछ आजीब-सा भी लगता था। एक सुखद और अलग-अलग तरह के अहसास के बावजूद। लेकिन यही बालक बड़ा होकर जब संध्या को स्त्री वेशभूषा में देखता है तो उसके स्त्रियोचित रुप-लावण्य पर मोहित हो जाता है। अवश होकर उसे बाहों में भर लेता है। वह महसूसता है - "मेरा स्पर्श उसे कहीं असहज कर रहा था। मुझे भी.... मैंने उसे और कसते हुए, उसके होठों के निमंत्रण को अपनी स्वीकृति देनी चाही... ।"[11] वहाँ गौरतलब है कि यह कथावाचक सूत्रधार की अपनी लालसा थी, न कि संध्या का आमंत्रण। वरना वह उसके बाहुपाश से कसमसाकर छूटने का प्रयास न करती और न यह कहती - "भैया पीछे हटो, क्या हो गया है तुम्हें?... मैं तो भैया कहती हूँ ... चलो अब छोड़ो भी।"[12] यहाँ संजय या संध्या एकनिष्ठ स्त्री के चरित्र को जीती हुई दिखायी देती है; क्योंकि राहुल उसका 'गिरिया' है, उसका फ्रैण्ड है। वह उसे धोखा नहीं दे सकती। अंत में संध्या के साथ घटित त्रासदी पाठक को झक-झोर देती है। उसे छिबरा बनाने के प्रसंग से इस वर्ग के बीच पनप रहे घृणित और डरावने तथ्यों का पर्दाफाश भी होता है। प्रतापगुरु द्वारा उनका छिबरवाना, उसका मृत्यु को प्राप्त होना और रेशमा द्वारा उसका अन्तिम संस्कार किया जाना किन्नर समुदाय में मानवीय रिश्तों के तार-तार होने, ईर्ष्या, द्वेष, जलन व घृणा को दर्शाता है।

तीसरा खण्ड 'जिस्म और जज्बात का संतुलन' का है। इस खण्ड की पूरी कहानी सुनन्दा नाम के किन्नर के इर्द-गिर्द घुमती है। लेखक ने पहली बार उसे एक मित्र के यहाँ बधाई मांगते देखा था। "करीने से बालों को बाँधकर उसने जूड़ा बना रखा था। .... सिर की मांग के बीच एक प्यारा-सा टीका, गोल मोटी बिन्दिया.... जो उसके चौड़े माथे पर खूब फब रही थी, नाक में लौंग .... होंठ....एकदम रसीले-से गुलाबी।..... होठों से थोड़ा-सा

बायें नीचे की तरफ एक काला-सा तील जो उसके सॉवरेपन को और निखार रहा था।"[13] सूत्रधार नायक, कथानक के बीच अनेक बार अपनी विवशता को दर्शाता है। एक द्वन्द है उसके भीतर। वह कहता है -

"जाहिर है कि 'इन जैसों' से यह मेरा पहला परिचय नहीं था। सुनन्दा मेरे लिए नयी जरुर थी, मगर मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि आखिर मैं ही क्यों.... क्यों मैं ही 'इन जैसौ' के सम्पर्क में रह-रहकर आ जाता हूँ।.... नहीं मालूम कि ऐसा क्या था, जो अपने बचपन से मैं एक बार तारा के सम्पर्क में आया, तो फिर यह सिलसिला ही बन गया। कह सकते हैं कि एक सम्पर्क से दूसरा सम्पर्क.... और दूसरे परिचय से तीसरा.... मगर बात केवल इतने भर से खत्म नहीं हो जाती। कुछ तो था, जो मुझे 'इनकी' ओर खींचता था, पर क्या था? .... आखिर वह क्या था, जो बार-बार मुझे 'इनके' या फिर 'इन जैसों' .... और इनसे जुड़े मुद्दे - मसलों के पास ले आता था! कोई आकर्षण? लगाव-खिंचाव? जानने की जिज्ञासा? कोई कुतुहल?.... या फिर कोई ऐसा कारण, जो मुझे समझ नहीं आता हो और मेरे किसी अतीत, प्रारब्ध, या मात्र संयोग से जुड़ा रहा हो! कुछ भी हो, तारा माँ से लेकर रेशमा और रेशमा से होते हुए संध्या.... और अब यह सुनंदा।"[14]

सुनन्दा से परिचय में मात्र संयोग न होकर कथावाचक की जिज्ञासा और लगाव ही हावी लगता है। उसकी सुन्दरता भी आकृष्ट करती है। लेखक ने लिखा है - "सुनन्दा के बारे में सीधे-सीधे या इतनी जल्दी कुछ भी कहना कठिन था, जब तक मैं उसे कुछ बेहतर नहीं जान लेता। शुरु में ही मुझे लगा था कि यह बहुत जटिल चरित्र है। वैसे अब तक मैं इतना तो समझ ही गया था कि 'वे सभी' उतने सहज-सरल नहीं होते। अनेक तरह की जटिलताओं में गड्डमड्ड होते हैं, जहाँ इनके व्यक्तित्व और जीवन को समझ कर इनकी जटिलताओं के सिरे पकड़ पाना वाकई कठिन होता है।.... मगर क्या हम अपने आस-पास या अपने बहुत करीब के लोगों की जटिलताओं को सहजता से समझ पाते हैं?.... फिर इनके भीतर तो ईश्वरीय जटिलताएँ भी होती हैं..... जिन्हें न तो ईश्वर ने ही ठीक से समझा है और न 'ये' खुद ही समझ पाते हैं।.... "[15]

सुनंदा के व्यक्तित्व का वर्णन करता हुआ लेखक कहता है - "इतना धीर-गम्भीर व्यक्तित्व कि प्राय : 'हम जैसों ' में भी नहीं मिलता जो खुद को सहज-सुगम्य मानते हैं। .... इतनी सुम्यता थी उसमें कि उस के चेहरे का लावण्य देखते ही बनता था।.... गोल चेहरा, रंग सावला, तराशे हुए नयन-नक्श, भवें कमान-सी.... जो गहरी, कजरारी, झील-सी ऑखों के तटबंध लगती थीं। काजल उन्हें और गहरा बना जाता था।.... पलकों की सादगी ऐसी की अगर उठतीं, तो बिना कहे बहुत सारे सवाल छोड़ जातीं। सच पूछो, तो मैं सुनन्दा को ज्यादातर उसकी पलकों के आरोह-अवरोह से ही जानता हूँ। जब भी मेरी नज़रें उसकी आँखों पर टिकती, मुझे वहाँ कुछ भीगा-भीगा सा नज़र आता..... वह भीतर की कोई नमी नहीं थी.... उसके व्यक्तित्व की आर्द्रता थी। उसकी सादगी का गीलापन। उसमें 'इनके' जैसा कथित छिछोरापन नहीं था.... एक गहरायी थी।"[16]

लेखक पूरी समझ बूझ के साथ सुनंदा से सांकेतिक भाषा में बात करता है, ताकि उसका विश्वास पाकर उसके करीब पहुँच सके। होता भी यही है। सुनन्दा एक परिपक्व हिजड़े के रुप में सामने आती है। कई बार स्वयं लेखक उसकी विद्वता का कायल होता है। उसका गृहस्थ जीवन है, जिसमें 'गिरिया' के रुप में सुधाकर पुरुष का किरदार है। गलतफहमी और इर्ष्या के कारण सुनन्दा का गृहस्थ जीवन बिखर जाता है।

इस खण्ड में सुनन्दा की अंतरकथा से उनकी सामाजिक संरचना का नया उदघाटन होता है। कहानी बड़े फलक पर दस्तक देती है। साम्प्रदायिक नफरत की आग में भस्म होते भाई-चारे के माहौल के बीच इस वर्ग का नन्दलाल मिश्र बनाम सुनन्दा बनकर रुखसाना बी और सुलतान की आतताइयों से हिफाजत करता है। यहाँ हमें दो धर्मों की वही सनातनी गंगा-जमुनी समरसता दिखायी देती है। इस उपेक्षित वर्ग में हिजड़ों का न धर्म महत्वपूर्ण है और न उनकी जात। वह केवल विधाता की ऐसी अधूरी रचना है, जिसके जजबातों को महसूस किया जा सकता है। उन्हें प्यार किया जा सकता है। कथा का यह अंश जितना रोचक और महत्वपूर्ण है, उतना ही मर्मस्थल को छूने वाला।

इस उपन्यास का चौथा खण्ड 'क़ातिल अदाओं का क़त्ल्' रेखा नाम के किन्नर को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। उपन्यासकार ने रेखा का परिचय इस प्रकार दिया है - "गौर वर्ण, अच्छी कदकाठी, तीखे नाक-नक्श, नाक पर लश्कारा मारती लौंग, और कानों में लम्बे लटकते छुमके ।सिल्क के सूट में लिपटी वह काफी आकर्षक लग रही थी।"[17] अशुए (उपन्यासकार पत्रकार) पहली बार अपने मित्र मुकेश कपुर के साथ रेखा से मिलने उसके घर गये थे। बात-बात में रेखा की निजी जिन्दगी के बारे में अशुए को जानकारी मिली कि इसका असली नाम राजेन्द्र था। इसके पिता मोहनलाल इण्डिया गेट पर फलों की रेहड़ी लगाया करते थे। राजेंन्द्र ने एक पुरुष के रुप में जन्म तो लिया था लेकिन स्त्री रुप अन्दर से उसे लगातार परेशान कर रहा था। एक दिन सलमा गुरु उसे अपने साथ ले गई। सलमा ने उसका हुलिया बदलवा दिया। इसतरह से वह अपनी असली दुनिया में अपने जैसे लोगों द्वारा बसाये गये लोगों के बीच रहने लगी। एक दिन वह सात्रे(स्त्री वस्त्र) में अपने घर आयी तो घर में हंगामा मच गया। पिता ने उसे बहुत पीटा, माँ ने खाने की थाली उसके सामने पटक दी । इतना अपमानित होने पर भी उसने उफ् तक नहीं की। गुरु सलमा ने उसका नाम रेखा रखा। उस समय फिल्मी अभिनेत्री रेखा की लोकप्रियता चरम पर थी। रेखा उसकी भी पसंदीदा कलाकर थी। रेखा जहाँ रहती थी, उसके घर के आसपास का माहौल कुछ ठीक नहीं था। तमाम तरह के लोग अलग-अलग पेशों में लगे हुए जिन्दगी जी रहे थे। नशा और अपराध की दुनिया से ताल्लुक रखनेवाली हर चीज़ वहाँ मौजुद थी। ऐसे माहौल में रेखा के लिए जीना आसान न था। कहानी में नगमा के माध्यम से रेखा का परिचय मिलता है । कथावाचक ने कई बार यह स्पष्ट किया है कि वह उस वर्ग के बीच एक विशिष्ट व्यक्ति है । उसका आदर सम्मान है, चूँकि वह एक पत्रकार भी है । कई, बार यह

परिचय वह स्वयं भी देता है । एक पत्रकार-लेखक की ही दृष्टि का कमाल है, जो वी. वी. आई. पी. एरिया के बीच बसे 'सांगली मैस' इलाके का अनावरण करती है। पाठक'सांगली मैस' या 'प्रिसिस पार्क' की लोकेशन और उसमें रहने वाले लोगों का संक्षिप्त इतिहास जानकर हैरत में डूब जाता है ।लेखकने उस स्लम में रहने वालों के कार्यकलाप, उनकी मानीसकता का बारीकी से अध्ययन करके, उनका सजीव और विस्तृत चित्रण किया है । उसमें प्रामाणिकता झलकती है । लेखक के अनुसार – "वहॉ जरायम धन्धे फलते-फूलते हैं, तो असामाजिक तत्वों का बोलबाला रहता है । मारपीट, लूटपाट, नशे का कारोबार, जिस्मफरोशी के कारण पुलिस तथा सरकारी का आमदोरफ्त रहती है । ऐसे माहौल में रेखा का दबंग होकर जीना पाठक को असहज नहीं करता। लेकिन उसकी यही खुद्दारी और आत्मसम्मान से जीने की चाह में इर्ष्या और दुश्मनी आड़े आ जाती है; क्योंकि कुछ लड़कों के नशा बेचने की शिकायत रेखा ने ही पुलिस में की थी। वही रंजिश और विश्वासघात के चलते सरेआम उसकी हत्या कर दी जाती है। उसकी जैविक माँ और बहन का जीवन निराधार हो जाता है। जिसकी जिम्मेदारी रेखा की चेली मोहिनी स्वयं संभाल लेती है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जन्म के रिश्तों से इतर, उनके बीच अंकुरित सहज मानवीय संबंधों का यह उत्कृष्ट उदाहरण उनके जीवन - दर्शन को व्याख्यायित करता है।"[18]

उपन्यास का अन्तिम पड़ाव पांचवा खण्ड 'दया की दया का अंत'(हत्या) है जो दया नामक हिज़डे पर केन्द्रित है। दया गाजियाबाद की ररहनेवाली थी। मोहिनी नाम की किन्नर ने उपन्यासकार को दया का पता दिया था। मोहिनी आशु को अपनी मौसी के रुप में दयारानी का परिचय देती है। खास बात यह है कि अंत तक परिचय की श्रृंखला कायम रहती है और इससे साफ जाहिर होता है कि उनकी दुनिया कितनी छोटी है। या वे एक दूसरे के कितने आसपास हैं। दयारानी से मिलने पर पाठक के कई भ्रम टूटते हैं। हिजड़ा वर्ग की अब तक की सारी छबियाँ ध्वस्त होती हैं। जब वह संभ्रान्त, परिपक्व, धवल पीरधान में इलाके में चर्चित सामाजिक कार्यकर्ता से नेता बनी दयारानी से रु-ब-रु होता है। सूत्रधार आशु और पाठक, दोनों ही उसके आभामण्डल से अभिभूत हो उठते हैं – "वहाँ न तालियों का आतंक है। न कहाँ गाना-बजाना या बधाई के लिए इसरार या तकरार है। वहाँ उत्कट आकांक्षा है - सामाजिक, सरोकारों से बाबस्ता, अपने वर्ग को समाज में सम्मान दिलाने की और यथा सामर्थ्य उसकी पैरवी। एक जंग! जिसके लिए दयारानी संवैधानिक पद पाने की भरसक कोशिश करती है। उसे एम. पी. और एम. एल. ए. के लिए पहली हिज़ड़ा उम्मीदवार होने का श्रेय भी हासिल होता है। वह पत्रकार आशु से सहयोग का अनुरोध करती है, लेकिन चुनाव में सफल नहीं हो पाती।"[19]

पाठक की पूरी सहानुभूति और सम्मान दयारानी को मिलता है, लेकिन अपनी ही भतीजी, जिसे उसने अपनी बच्ची की तरह पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, जब वही उसकी हत्या का कारण बनती है तो पाठक

सनाका खा जाता है। जैविक रिश्तों की मर्यादा तारा-तार हो जाती है। रेखा, संध्या और दया की हत्याएँ भी एक सरलीकरण की तरह-सामने आती हैं कि वे भी सामान्य समाज में व्याप्त प्रतिकार की क्रूरता से अलग नहीं हैं।

यहाँ गौरतलब यह भी है कि 'दरमियाना' की पूरी कहानी के बीच एक ही अंतरनाद सुनायी देता है। उस वर्ग का हर एक चरित्र – तारा, गुलाबो, संध्या, सुनंदा, नगमा, रेशमा, चम्पा, चन्दा, शमाँ, सलमा, मोहिनी, दया आदि का पूरा जीवन घर, पति और संतति की कामना के इर्द-गिर्द घूमता है। सामान्य गृहस्थ की चाह उन्हें जीवनपर्यन्त बेचैन किये रहती है। इस विकलता का अहसास हम आप नहीं कर सकते.... विधाता भी नहीं। जिसने उन्हें मनोभावनाओं से तो परिपूर्ण बनाया, किन्तु उनकी देह के अवयव अधूरे छोड़ दिये।

उपन्यास पढ़ते हुए, एक प्रश्न बराबर सिर उठाता रहा कि इस वर्ग में सभी वे पात्र हैं, जो पुरुष रुप में जन्मे, लेकिन मन में स्त्रियोचित भावों के कारण स्त्री बनकर ही रहना चाहते हैं। इससे इतर स्त्री रुप में पैदा होकर पुरुष की तरह रहने वालों पर यह कहानी कतई प्रकाश नहीं डालती.... इस वर्ग में आखिर उनकी भूमिका क्या होती है? क्या वे प्रतापगुरु या राहुल के रुप में हैं? पर यह स्पष्ट नहीं होता। एक और बात यहाँ स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि दरमियाना व अन्य उपन्यास कथाओं के माध्यम से पाठकों की कतिपय जिज्ञासा शान्त होती है और उनके प्रति सहानुभूति भी पैदा होती है। संभवत: लेखक का यह अभीष्ट भी है। लेकिन सोचने का विषय यह भी है कि किसी भी समस्या या विषय के दोनों पक्ष होते हैं, जैसे सिक्के के दो पहलू - ब्लैक एण्ड हवाइट(काला-सफेद)। प्रबुध्द पाठक को दरमियाना वर्ग के स्याह पक्ष और उससे पैदा होने वाली जटिल समस्याओं पर भी थोड़ी रोशनी डालनी चाहिए।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि दरमियाना उपन्यास के कथानक में रवानगी है. रोचकता भी है। कहानी का तादात्म अन्त एक बना रहता है। वैसे हर खण्ड अपने में सम्पूर्ण कहानी कहता है, परन्तु कहानियों को उपन्यास के खाँचे में बाँध लेने का बहुत सफल प्रयास लेखक ने नहीं किया है। तथ्यों और प्रामाणिकता के बरअक्स कल्पनाशीलता का अभाव खटकता है। हर कथा को अलग खण्ड के रुप में रेखांकित करना भी उपन्यास के स्वरुप में अवरोध-सा प्रतीत होता है। अन्तिम खण्ड में लेखक का पत्रकार चरित्र अधिक मुखर होकर सामने आया है। उस भाग में रिपोर्टिंग की बहुलता के कारण कथा की सहज रवानगी और उसका कला-पक्ष लगभग ध्वस्त होने लगते हैं। उपन्यास में बेहतरीन कथानक का एक रिपोर्ट से समाप्त होना भी अखरता है। इसमें संदेह नहीं कि लेखक ने दरमियाना वर्ग के क्रियाकलापों, बोलचाल व उनकी रीति-नीति से बखूबी परिचित कराया है। कथावस्तु से गुज़रकर जिज्ञासु पाठक को संतोष मिलता है। कहानी के स्वरुप,

बनावट, उसकी घटनाओं की प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। उपन्यास की भाषा सरल-सहज व संवेदन शील है।

सन्दर्भ संकेत :-

1. सफलता 'सरोज' (2019), किन्नर विमर्श: कल, आज और कल, (पृष्ठ. 158) कानपुर, विकास प्रकाशन.
2. अखिल सुभाष (2018), दरमियाना(पृष्ठ. 14), कानपुर : अमन प्रकाशन, रामबाग(उत्तर प्रदेश)
3. वही पृ. 15.
4. वही पृ. 15.
5. वही पृ. 18.
6. वही पृ. 19.
7. वही पृ. 19-20.
8. वही पृ. 24.
9. वही पृ. 24.
10. वही पृ. 23.
11. दमियाना पृ. 33.
12. वही पृ. 34.
13. वही पृ. 63.
14. वही पृ. 61.
15. वही पृ. 61-62.
16. वही पृ. 61-62.
17. वही पृ. 92.
18. सफलता 'सरोज' (2019), किन्नर विमर्श: कल, आज और कल, (पृष्ठ. 162) कानपुर विकास प्रकाशन.
19. वही पृ. 162-163

****